यह लेख राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों पर प्रिंट मीडिया में चली बहस से पाठक को परिचित कराता है। लेखक ने हिन्दी एवं अंग्रेजी की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेखों के तर्कों को एक जगह लाने का श्रमसाध्य कार्य किया है। लेख विभिन्न पक्षों के द्वारा दिए गए तर्कों को बिना अपनी व्याख्या के व्यवस्थित तरीके से सामने रखता है।

कार्टून-प्रसंगः विमर्श का विहंगावलोकन

राजाराम भादू

राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा प्रकाशित कक्षा 11 की राजनीति शास्त्र की पुस्तक में छपे एक कार्टून से जो विवाद पहले अखबारों में उठा, वह संसद तक पहुंच गया। संसद में विवाद ने एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित राजनीति शास्त्र की नवीं से बारहवीं तक की सभी पुस्तकों को चपेट में ले लिया। उल्लेखनीय है कि इन पुस्तकों में भी कई कार्टून प्रकाशित किए गए हैं। इसकी प्रतिक्रिया में देश भर के पत्र-पत्रिकाओं और आभासी दुनिया के संजाल पर व्यापक बहस और विमर्श आरंभ हुआ जो अभी तक जारी है।

इस विवाद का एक सिरा वह समूह है जिसने एनसीईआरटी से छपी 11 वीं की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तक में डॉ. भीमराव अंबेडकर को लेकर बने एक कार्टून पर गंभीर आपत्ति दर्ज कराई थी। इसका दूसरा आयाम संसद है जिसमें पहली बार की चर्चा (11 मई 2012) इस आपत्ति के समर्थन में थी। बाद में सांसदों ने पाया कि एनसीईआरटी द्वारा कक्षा 9 से 12 तक प्रकाशित पुस्तकों में कार्टूनों के माध्यम से राजनेताओं का मखौल उड़ाया गया है। इस मसले पर 14 मई 2012 को बहस हुई जो केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री के बयान के साथ समाप्त हुई। संसद में एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी माननीय सदस्यों ने दलीय सीमाओं से उठकर एनसीईआरटी की इन किताबों पर कड़ी आपत्ति दर्ज कराई थी। इस प्रकार संसद में यह मुद्दा अंबेडकर की छवि पर आघात से आगे बढ़कर स्वातंत्र्य आन्दोलन के नेताओं और स्वतंत्र भारत के राजनेताओं की छवि के विरूपण तक जा पहुंचा।

तदनन्तर जिन लोगों ने अंबेडकर प्रसंग में कार्टून पर आपत्ति की थी, उन्होंने तो अपने को वहीं तक सीमित रखा। जबकि माननीय सांसदों में से किसी ने सदन के बाहर इस मसले पर

परिचय

द्विमासिक 'संस्कृति मीमांसा' के संपादक, स्वयंसेवी संगठन समान्तर 'सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च' के कार्यकारी निदेशक (मानद)।

गंभीर संवाद किया हो ऐसा ध्यान में नहीं आता। विमर्श का तीसरा आयाम इस परिघटना को लेकर पत्र-पत्रिकाओं, दृश्य-माध्यमों और सामाजिक संजाल पर बिखरा संवाद है जिसमें एकाध अपवाद को छोड़ दिया जाए तो लगभग एक स्वर में उपरोक्त आपत्तियों पर प्रतिवाद करते हुए कार्टूनों को इन पुस्तकों में यथावत् बनाए रखने की पैरवी की गई है। शायद ही कोई इस वृहद् विमर्श के ओर-छोर की पड़ताल कर सके। तथापि हमने अंबेडकर कार्टून पर प्रारंभिक आपत्तियों को समझने की कोशिश की है। संसद की बहस को पढ़ा है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करीबन 70 लेखों/टिप्पणियों को देखा है जिसमें संदर्भित पाठ्यपुस्तकों में चयनित कार्टूनों को पुनर्प्रकाशित किया गया है। इस आधार पर यह टिप्पणी की जा रही है ताकि इस विमर्श को लेकर और बेहतर राय बनाने में हमें कुछ मदद मिल सके।

विमर्श का संदर्भ

विमर्श के फोकस और इसकी परिधि के संदर्भ में सुनील को उद्धरित करना प्रासंगिक है, ''देश में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के तहत पढ़ने वाले बच्चे पांच-सात फीसद होंगे, जिनके लिए ये नई पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई थीं। ज्यादातर चर्चा-बहस इन पांच-सात फीसद बच्चों को सामने रखकर ही हो रही है। देश के बाकी नब्बे-पचानवें फीसद बच्चे तो प्रादेशिक शिक्षा बोर्डों की किताबों से पढ़ते हैं, जहां और भी बुरी हालत है। आज गरीब तबके के बहुसंख्यक बच्चे उन उपेक्षित सरकारी स्कूलों या घटिया निजी स्कूलों में पढ़ने के लिए अभिशप्त हैं, जहां पढ़ाई के नाम पर उनके साथ क्रूर मजाक होता है। पाठ्यपुस्तक कैसी हो, यह सवाल वहां अप्रसांगिक हो जाता हैं।'' इस पर कहा जा सकता है कि किसी विमर्श का आकलन इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि उसका कवरेज कितना विस्तृत है। बल्कि विमर्श की गुणवत्ता का आधार इसकी प्रकृति और सार-तत्व है। निश्चय ही उस लिहाज से यह बहस अभूतपूर्व है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (एनसीएफ 2005) की निर्मिति और उसकी अनुपालना में पाठ्यपुस्तक निर्माण को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षाविदों, विषय-विशेषज्ञों और शिक्षकों का जैसा सामूहिक उपक्रम और विचार-मंथन सामने आया था, उसका किसी हद तक प्रतिबिम्बन इस बहस में दिखाई देता है। हालांकि इसमें शिक्षकों की भागीदारी लगभग नगण्य है।

विमर्श में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं और उनमें लिखने वालों की बहुतायत है। इसका हिन्दी वाला हिस्सा बहुत छोटा है। अंग्रेजी में लिखने वालों में प्रचलित प्रवृत्ति के अनुरूप प्रोफेसरों, अध्येताओं ने ही ज्यादा शिरकत की है। इस बहस में पाठ्यपुस्तकों को बरतने वाले नगण्य हैं। हिन्दी क्षेत्र के दलित बुद्धिजीवियों-कार्यकर्ताओं ने भी विमर्श से ज्यादा संबद्धता नहीं जताई है। इस तरह अपनी प्रकृति में यह शिखर का विमर्श है जिससे छनकर बहुत कम धरातल तक पहुंचता है।

एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों को लेकर ऐसा विवाद पहली बार नहीं हुआ है। प्रो. कृष्ण कुमार के अनुसार तो एनसीईआरटी का विगत 50 वर्ष का इतिहास विवादों का इतिहास रहा है। अलबत्ता पहले ऐसा विवाद सामान्यतः इतिहास की किताबों को लेकर होता था, इस बार विवाद में राजनीति शास्त्र की किताबें हैं। राज्य सभा में 2006 में हिन्दी की नई पाठ्यपुस्तकों पर भी आपत्ति उठाई गई थी और उसमें भी विभिन्न राजनीतिक दलों का एक स्वर उभरा था। तब भी आपत्तिजनक अंशों को पाठ्यपुस्तक से तुरंत निकालकर जिम्मेदार व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही की मांग की गई थी। आश्चर्य है कि प्रस्तुत लेखों/टिप्पणियों में उस प्रसंग का कहीं हवाला नहीं है। सिर्फ प्रो. कृष्ण कुमार ने अपने लेख में इसका उल्लेख किया है। प्रश्न यह भी उठता है कि परिदृश्य में तब ऐसी बहस क्यों नहीं उठी थी?

अंबेडकर-प्रसंग

मौजूदा विवाद एक कार्टून से उपजा है। यह कार्टून एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित राजनीति शास्त्र की 11

वीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में छपा है। विख्यात कार्टूनिस्ट शंकर के बनाए इस कार्टून को सामान्य दृष्टि से देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. अंबेडकर संविधान समिति रूपी घोंघे पर बैठे हैं और उसे कार्य पूरा करने के लिए हांकने का प्रयास करते दिखाई दे रहे हैं। उनके ठीक पीछे तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू चाबुक ताने खड़े हैं और आशय यह प्रतीत होता है कि इस कार्य को शीघ्र पूरा करने के लिए वे डॉक्टर अंबेडकर पर दबाव बना रहे हैं। दलित चिंतक चन्द्रभान प्रसाद कहते हैं कि बेशक यह कार्टून शंकर पिल्लई की पत्रिका 'शंकर्स बीकली' में 1946 में छपा था किन्तु वीकली के पाठक बहुत ज्यादा नहीं थे। नए संदर्भ में कार्टून का प्रकाशन बच्चों में भिन्न धारणा बना सकता है। अपने लेख में प्रसाद एनसीईआरटी की पुस्तक 'संविधान कैसे बना?' के विभिन्न पृष्ठों का उल्लेख करते हुए डॉ. अंबेडकर के योगदान को कमतर आंकने का भी आरोप लगाते हैं। वे संविधान निर्माण में डॉ. अंबेडकर के अथक श्रम का तथ्यात्मक उल्लेख करते हैं।

कांचा इलैया डॉ. अंबेडकर को दलितों के लिए पैगम्बर का दर्जा देते हैं। उनके अनुसार डॉ. अंबेडकर के कार्टून पर दलितों की प्रतिक्रिया वैसे ही स्वाभाविक है जैसे कि किसी पैगम्बर के ऐसे चित्रण पर अन्य धर्मावलम्बियों की होती है। सुधीन्द्र भदौरिया अपने लेख में डॉ. अंबेडकर को दलितों का प्रेरणा-पुरुष मानते हुए आरोप लगाते हैं कि कार्टून से गलत संदेश जा रहा है। हम देख रहे हैं कि हमारा पडोसी देश नेपाल संविधान निर्माण की प्रक्रिया से किस कदर जूझ रहा है। उसकी तुलना में भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया को डॉ. अंबेडकर ने सहज गति से आगे बढ़ाया था।

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा एनसीईआरटी द्वारा निर्मित राजनीति शास्त्र की नवीं से बारहवीं कक्षा की पुस्तकों की समीक्षा के लिए प्रो. सुखदेव थोराट की अध्यक्षता में समिति गठित की गई। इस समिति के समक्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें दलित बुद्धिजीवियों के साथ गैर-दलित बुद्धिजीवी और एक्टिविस्ट शामिल थे। इस प्रतिवेदन में उन्होंने कहा कि डॉ. अंबेडकर के कार्टून पर उनकी आपत्ति को 'हास्य की शक्ति' की नासमझी और 'कार्टूनों से भय' माना जा रहा है जो कि सही नहीं है। उनके अनुसार कार्टूनों और चुटकुलों को पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं माना जा सकता बल्कि ये पूर्वग्रहों के विस्तार और घृणा फैलाने का माध्यम रहे हैं। इसलिए इन्हें आलोचनात्मक तरीके से देखने की जरूरत है। स्त्री-विमर्श का संदर्भ देते हुए प्रतिवेदन में कहा गया है कि कोडे, जंजीर और हंटर के चित्र की हिंसा को उत्पीड़ित वर्ग ही समझ सकता है। प्रतिवेदन में पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक निर्माण में दलित और वंचित वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व की मांग भी की गई।

डॉ. अंबेडकर के कार्टून विवाद को सबसे पहले रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के रामदास आठवले द्वारा उठाया गया था। इसके बाद प्रो. पलशीकर के कार्यालय पर रिपब्लिकन पैंथर्स पार्टी ऑफ इंडिया के कार्यकर्ताओं द्वारा तोड़-फोड़ की गई थी। इसकी निंदा करते हुए दलित बुद्धिजीवी हरि नाटके ने कहा था कि अंबेडकर स्वयं वैचारिक स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। स्वतंत्र अध्येता रोहिणी हैंसमेन कहती हैं कि डॉ. अंबेडकर जानते थे, अगर जाति-आधारित शोषण से मुक्त होना है तो लेखन, भाषण और विचारों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण को बढ़ाने वाली शिक्षा की जरूरत है। बुद्धिजीवियों के बड़े तबके द्वारा प्रो. सुहास पलशीकर के कार्यालय पर तोड़-फोड़ की निंदा की गई जिनमें कई दलित बुद्धिजीवी भी शामिल हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के सहायक प्रोफेसर हरीश वानखेडे मानते हैं कि डॉ. अंबेडकर पर शंकर के कार्टून पर उठाए गए विवाद से दलित आन्दोलन की व्यापक रूप से और डॉ. अंबेडकर की विशेष रूप से प्रतिष्ठा धूमिल हुई है। वानखेडे मानते हैं कि दलित आन्दोलन की शक्ति गंभीर वैचारिकता, राजनीतिक संघर्ष और जन एकजुटता से बढ़ी है न कि अवसरवादी और सस्ते हथकंडों से। दलित आन्दोलन को तार्किक विमर्श के लिए तैयार रहना चाहिए।

टी. के. राजलक्ष्मी ने अपने लेख में कहा है कि राजनीति शास्त्र की नवीं से बारहवीं कक्षा की एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकों में करीब 60 से 80 के बीच कार्टून हैं। कहा गया है कि नई एनसीईआरटी की सभी पाठ्यपुस्तकों में करीबन 150 कार्टून हैं। ये कार्टून विख्यात कलाकारों आर. के. लक्ष्मण, इरफान, मारियो मिराण्डा, हरीश चंद्र शुक्ला और येशुदासन के बनाए हुए हैं। राजलक्ष्मी संसद में उठे कार्टून विवाद को 'अवसरवाद' और 'अति-प्रतिक्रिया' मानती हैं जिसके पीछे अस्मिता की राजनीति है। वे मानती हैं कि आलोचनात्मक संधान, उत्सुकता और आत्म-परीक्षण की भावना के बिना सामाजिक विज्ञान का शिक्षण संभव ही नहीं है। कार्टून इससे परे नहीं हैं।

अपने लेख में धनंजय राय पाते हैं कि टकराहट की वजह कार्टून के माध्यम से अंबेडकर का मानवीयकरण है जो उनकी देवत्व की नव-स्थापित प्रतिमा के प्रतिकूल जाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर हरीश त्रिवेदी मानते हैं कि संविधान कोई उपन्यास या महाकाव्य नहीं है जिसका कोई एक 'लेखक' है। संविधान सामूहिक रूप से रचा गया एक दस्तावेज है। त्रिवेदी के अनुसार न ही इसका कोई एक मुख्य रचयिता है। डॉ. अंबेडकर 'कमेटी टू स्क्रूटिनाइज दि ड्राफ्ट कन्स्टीट्यूशन' के अध्यक्ष थे। संविधान का प्रारूप तो पहले ही तैयार था जो संविधान सभा द्वारा गठित विभिन्न समितियों की रिपोर्टों के आधार पर तैयार किया गया था। इन रिपोर्टों को तैयार करने का काम संविधान सभा के सचिवालय में कार्यरत एस. एन. मुखर्जी (चीफ ड्राफ्ट्समेन) और बी. एन. राय (संवैधानिक सलाहकार) ने किया था। डॉ. अंबेडकर ने 25 नवम्बर 1949 के अपने भाषण में इन लोगों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा था कि मुझे दिया जा रहा श्रेय असल में उतना मेरा नहीं है। त्रिवेदी आखिर में कहते हैं कि अब डॉ. अंबेडकर दलितों के पितामह हैं जो हमारे लिए अछूत हो गए हैं, जिन्हें आप छू नहीं सकते। वे किसी भी तरह की आलोचना से परे हैं।

आनंद तेलतुमडे अंबेडकर के दैवीकरण की आलोचना करते हुए कहते हैं कि दलित आन्दोलन ठोस जमीनी मुद्दों से भावात्मक मुद्दों की ओर भटक रहा है। वे बथानी टोला नरसंहार पर आए न्यायिक निर्णय और ऐसे ही प्रसंगों के हवाले स शिकायत करते हैं कि डॉ. अंबेडकर की विरासत न्याय के लिए संघर्ष और वंचितों का सशक्तिकरण है जो इधर छूटता जा रहा है। रामदास आठवले ने डॉ. अंबेडकर-नेहरू कार्टून की व्याख्या की है कि दलित को ब्राह्मण कोडे मार रहा है। धर्मेन्द्र कुमार ने इस कार्टून की कई कोणों से व्याख्या करते हुए आठवले की धारणा को खारिज करने की कोशिश की है। वे कहते हैं, डॉ. अंबेडकर और नेहरू दोनों के पास हैसियत है। नेहरू उतावले हैं जबकि अंबेडकर संयत और रचनात्मक हैं।

महापुरुष आस्था व्यक्त करने के लिए होते हैं, उनके बारे में सवाल नहीं किए जा सकते। और डॉ. अंबेडकर को ऐसा ही देवत्व प्रदान किया जा रहा है। कार्टूनिस्ट उन्नी ने अपनी टिप्पणी में डॉ. अंबेडकर-नेहरू कार्टून पर कहा है कि केवल मेनका गांधी को इस पर आपत्ति करने का अधिकार है क्योंकि बेचारे घोंघे पर अत्याचार किया जा रहा है।

कुलदीप कुमार लिखते हैं, वे विभाजन की त्रासदी के दिन थे जिनमें लोकतांत्रिक मूल्य क्षत-विक्षत हो गए थे। ऐसे में जनता संविधान की ओर बड़ी उम्मीद से देख रही थी। वे यह भी कहते हैं कि जिस देश में शास्त्रार्थ की ढाई हजार साल पुरानी परंपरा है, वहां ऐसी असहिष्णुता चिंताजनक है। 'दि बिजनेस स्टेन्डर्ड' लिखता है कि ऐसी असहिष्णुता लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धान्तों के खिलाफ है। प्रोफेसर मुशीरूल हसन मार्क ट्वेन को उद्धरित करते हैं, 'हंसी के आक्रमण के सामने कोई नहीं टिक सकता'। प्रो. हसन अपने लेख में ब्रिटिश काल के दौरान साहसिक कार्टून पत्रकारिता का विवरण देते हुए बताते हैं कि ब्रिटिश शासन के दौरान एक भी कार्टूनिस्ट को जेल नहीं भेजा गया। प्रताप भानु मेहता कहते हैं कि मूर्तियां कभी नहीं सोचतीं। मूर्तियां जीवित रहती हैं, विचार मर जाते हैं। गांधीजी की भव्य मूर्तियां लगी हैं, उनके विचार कहीं नहीं दिख रहे हैं।

शिक्षण में कार्टून

संसद की अगले दिन (14 मई 2012) की बहस में कार्टूनों को अखबारों और मीडिया का हिस्सा माना गया था। सांसदों को इस पर आश्चर्य और गुस्सा था कि इन्हें पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया गया है। उनका कहना था कि अखबारों में उन्हें लेकर आए दिन कार्टून छपते हैं, उन्हें इस पर कोई एतराज नहीं है बल्कि वे मीडिया की अभिव्यक्ति के पक्षधर हैं। लेकिन पाठ्यपुस्तकों में कार्टूनों की मौजूदगी और उनमें भी राजनेताओं को लक्षित किए जाने पर उन्हें गंभीर आपत्ति थी। इनमें देश के स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े नेताओं को भी नहीं बख्शा गया था। इससे माननीय सांसदों को लगा कि यह कोई गहरी साजिश है जिसमें केवल राजनेताओं की छवि को ही विरूपित नहीं किया जा रहा बल्कि शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली को ही संशय के घेरे में लाया जा रहा है। जैसा कि हरसिमरतजीत कौर बादल ने बहस की शुरुआत करते हुए कहा था कि हाल ही में उन्होंने 100 स्कूली बच्चों से बातचीत की, उनमें से कोई राजनीति में नहीं आना चाहता। सदस्यों ने इसके लिए राजनीति शास्त्र की उन किताबों को जिम्मेदार माना जो बच्चों में मौजूदा राजनीति के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर रही हैं।

साहित्यकार गिरिराज किशोर के अनुसार शिक्षा की पुस्तकों में कार्टूनों का होना परंपरागत चित्रावली की परंपरा में बदलाव है। यह छात्रों को कला के नए आयाम से जोड़ता है। अगर प्राचीन भित्तिचित्र देखें तो ये यथार्थवादी चित्र नहीं हैं, आज की तरह के कार्टून हैं।

गणेश जैसे भारी-भरकम देवता को मुत्युलोक के छोटे से मूषक पर सवार करा देने वाला कलाकार कितना कल्पनाशील रहा होगा। पाठ्यपुस्तकों की प्रक्रिया से जुड़े अलेक्स एम. जॉर्ज पाठ्यपुस्तकों में कार्टूनों का प्रयोग किया जाए अथवा नहीं इस प्रश्न पर विचार का स्वागत करते हैं। इस संदर्भ में वे पूर्व में लिखी इतिहास की पुस्तकों में दिए गए चित्रों का उल्लेख करते हैं। ये किताबें कुछ व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर लिखी जाती थीं जिनमें इतिहास के नायक होने थे अथवा खलनायक। उनके बारे में चित्र व सूचनाएं होती थीं। वहां आम जनता की सामूहिक भूमिका का कोई जिक्र नहीं होता था। राजनीति शास्त्र की इन पुस्तकों में विभिन्न प्रकार के वृत्तान्तों, कहानियों, केस स्टेडीज, अखबारी कतरनों, कविताओं और कार्टूनों का उपयोग किया गया है। अलेक्स दसवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त दलित कवि दया पवार की कविता का उललेख करते हैं जो हाशियाकरण को समझने में मदद करती है। उनके अनुसार कार्टून एक राजनीतिक वक्तव्य है जो तत्कालीन राजनीकि परिदृश्य और प्रसंगों को समझने में मददगार हो सकता है।

समाज विज्ञानी शिव विश्वनाथन के अनुसार यह विवाद नेहरू और अंबेडकर दोनों के लिहाज से अनुचित है। सम्मानित कार्टूनिष्ट शंकर राजनीति के व्यंग्य को समझते थे। कार्टून जाहिर करता है कि डॉ. अंबेडकर संविधान के निर्माता और सूत्रधार थे। हालांकि नेहरू संविधान में देरी को लेकर कुछ चिंतित नजर आते हैं। अंबेडकर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस कार्टून के आशय और इसमें निहित व्यंग्य को समझा था। सेन्टर फोर पॉलिसी रिसर्च के सीनियर विजिटिंग फैलो श्याम बाबू का कहना है कि संविधान की धीमी प्रगति के लिए न तो अंबेडकर दोषी हैं और न नेहरू को दोष दिया जा सकता है। ये विवाद दलित उभार और देश में बढ़ती असहिष्णुता का इजहार करता है।

नीलाद्रि भट्टाचार्य के अनुसार इन कार्टूनों को पाठ्यपुस्तकों में शिक्षणशास्त्रीय रणनीतियों की विविधता के रूप में देखा गया था जो बच्चों में आलोचनात्मक चिंतन को बढ़ावा देंगी। सामाजिक विज्ञान के पाठों की व्याख्या के लिए कुछ और युक्तियां भी अपनाई गई थीं, जैसे- छवियां, नक्शे, चार्ट और चित्र। इनके साथ ऐसे प्रश्न दिए गए थे जो बच्चों को विषय के बारे में सोचने और विचार करने के लिए प्रेरित कर सकें।

रोहिणी हेंसमेन के अनुसार डॉ. अंबेडकर-नेहरू कार्टून उस काल की बहसों और विमर्श की संस्कृति के बारे

में बताता है। कार्टून कहता है कि स्वयं कार्टूनिस्ट सहित कुछ लोग भारतीय संविधान को लेकर बहुत व्यग्र थे। कार्टून निरे तथ्यों से परे संविधान निर्माण की जीवंत प्रक्रिया को संकेतित करता है।

निवेदिता मेनन के लेख का शीर्षक ही इस विवाद पर गंभीर व्यंग्यात्मक टिप्पणी है- 'प्लीज सर, क्या मैं क्लास में अखबार ला सकती हूं?' वे माध्यमिक कक्षाओं के बच्चों को अपरिपक्व मानने को तैयार नहीं हैं जो अखबार पढ़ते हैं। उनमें से बहुत से बच्चे कई वयस्कों वाले अनुभवों से अवगत हो चुके होते हैं। उनके बीच राजनीति पर सामूहिक चर्चा के लिए कार्टून एक बेहतर माध्यम है। हालांकि वे मानती हैं कि सभी कार्टून सही संदेश देने वाले हों यह जरूरी नहीं हैं। उनके चयन में सावधानी रखनी होती है।

पत्रकार आर. अखिलेश्वरी की इससे भिन्न राय है। वे कहती हैं कि इस कार्टून में हास्य का कोई तत्व नहीं है। ये पूर्णतः अप्रसांगिक कार्टून है जिसमें कोई अन्तर्दृष्टि नहीं है और न ही यह संविधान निर्माण की प्रक्रिया को ठीक से व्यक्त करता है। पाठ के साथ कोई अन्य चीज दी जाए तो उसे पाठ के अर्थ को विस्तार देना चाहिए और पाठ में कुछ जोड़ना चाहिए। यह कार्टून संबंधित पाठ के साथ ऐसा कुछ नहीं करता।

अपने लेख में कुमकुम राय ने एनसीईआरटी की 11 वीं कक्षा की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तक की विशद् समीक्षा की है। वे कहती हैं कि पुस्तक के आमुख में पाठकों की प्रतिक्रियाएं सुझाव और विचार आमंत्रित किए गए हैं। पुस्तक में 25 कार्टूनों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण उद्धरण दिए गए हैं। उन्होंने संविधान सभा में आदिवासी समुदाय के मुद्दे पर जयपाल सिंह के भाषण के उद्धरण का हवाला दिया है। प्रश्नों के जरिए विषयवस्तु पर समझ बनाने की प्रयुक्ति अपनाई गई है।

'दि इकानॉमिक टाइम्स' के अनुसार शंकर का कार्टून अपने में एक ऐतिहासिक कृति है जो शिक्षण में प्रयुक्त हो सकता है। धनंजय राय के अनुसार पाठ के साथ कार्टून के तीन उपयोग हो सकते हैं; किसी चीज से ठीक से अवगत होना, उसे स्मरण रख पाना और उस पर चर्चा करना।

कार्टून, पाठ्यपुस्तक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

एनसीईआरटी की नवीं से बारहवीं कक्षा की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में करीबन 150 कार्टून बताए जाते हैं। ये देश-विदेश के ख्यात चित्रकारों के हैं। विवादित अंबेडकर-नेहरू वाले कार्टून के सृजक केशव शंकर पिल्लई को भारत सरकार द्वारा 1656 में पदम श्री, 1966 में पद्म भूषण और 1976 में पद्म विभूषण प्रदान किया गया था। क्या पाठ्यपुस्तकों में कार्टून छापने अथवा उसे हटाने के प्रश्न को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जोड़ा जा सकता है इस विमर्श में यह पहलू भी आया है। अपूर्वानंद उल्लेख करते हैं, 1989 में बच्चों के अधिकार से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में बच्चे के जानने, विचार करने और अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को स्वीकार किया गया है। भारत ने इस पर दस्तखत किया है।

'जनसत्ता' ने अपने संपादकीय में संसद के रुख को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति असहिष्णुता' माना। संपादकीय में माना गया कि कार्टून को पाठ्यपुस्तक में दिया जाना चाहिए या नहीं इस पर दो मत हो सकते हैं। साथ ही सवाल उठाया गया कि क्या इसी ढंग से तय होगा कि अकादमिक निर्णय किस तरह से होने चाहिएं? विभिन्न विश्वविद्यालयों व संस्थानों में विवादित पाठ्य-सामग्री के प्रति आक्रामक रुख को चार्मी हरिकृष्णन ने भी अपनी टिप्पणी में अभिव्यक्ति से जोड़कर देखा है। लेकिन मसला यहां पाठ्यपुस्तकों का है जो बच्चों द्वारा तैयार नहीं की गई हैं। प्रभात पटनायक अपने लेख में कार्टून विवाद को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से अलगाते हैं। पाठ्यपुस्तकों का निर्माण कोई मौलिक सृजन नहीं था। राज्य द्वारा कुछ व्यक्तियों को पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई थी। उनके अनुसार शंकर द्वारा सृजित कार्टून उनकी मौलिक अभिव्यक्ति थी। लेकिन वक्त के साथ इसका संदर्भ बदल गया था। संवेदनशीलता भी वक्त के साथ बदल जाती है। छह दशक पहले दलित समुदाय इतना मुखर नहीं था।

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला के निदेशक पीटर रोनाल्ड डिसूजा अपने गंभीर लेख में पाठ्यपुस्तकों से कार्टून निकालने की प्रक्रिया को सेंसर की तरह से देखते हैं। भारतीय परिदृश्य में कथित 'आपत्तिजनक' विषयवस्तु पर रोक लगाने अथवा इसे सेंसर करने की बढ़ती प्रवृत्ति पर चिंता जताते हुए वे इसे लोकतंत्र के लिए बहुत अशुभ लक्षण मानते हैं। इस संबंध में वे जे. एस. मिल. की पुस्तक 'ऑन लिबर्टी' से समाज के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की महत्ता को उद्धरित करते हैं। उनके अनुसार लोकतंत्र में भिन्न विचार को भी जगह मिलनी चाहिए भले ही ये असत्य हैं क्योंकि इससे सत्य को जांचने की शक्ति की परख होती रहती है। एक व्यापक अर्थ में पाठ्यपुस्तकें किसी विचार-सारणि को प्रतिबिम्बित करती हैं और इस विचार या चिंतन-पद्धति के प्रति आक्रामकता अथवा असहिष्णुता प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति के किसी रूप का ही निषेध है।

प्रभात पटनायक के अनुसार ये राज्य द्वारा तैयार कराई गई पाठ्यपुस्तकें हैं। लेखकों को द्वारा राज्य के निर्देश पर इन्हें तैयार किया गया है। आम बच्चों के लिए तैयार की गई इन पाठ्यपुस्तकों में लेखकों का सृजन या स्वतंत्र अभिव्यक्तियां नहीं हैं। इसलिए वे (लेखक) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बाधित होने का आरोप नहीं लगा सकते। नीलाद्रि भट्टाचार्य प्रत्युत्तर में कहते हैं कि एनसीईआरटी एक अर्ध-स्वायत्तशासी संस्थान है जिसका अपना ढांचा है और जो अपने स्तर पर निर्णय लेता है। पाठ्यपुस्तकें तैयार कराने का काम न तो राज्य द्वारा दिया गया था और न ही लेखकों का चयन राज्य ने किया था। ये पाठ्यपुस्तकें एक अभूतपूर्व लोकतांत्रिक और सामूहिक प्रक्रिया में तैयार हुई थीं। लेकिन ऐसे अर्ध-स्वायत्त क्षेत्र का अस्तित्व अपरिहार्य रूप से नाजुक होता है। ये न तो पूरी तरह राज्य द्वारा नियंत्रित है और न ही उससे स्वतंत्र। इसकी सापेक्ष स्वायत्तता का स्थायित्व पूरी तरह इसके प्रतिरोध पर निर्भर करता है। आखिर विश्वविद्यालय भी तो अपनी स्वायत्तता के लिए जद्दोजहद करते रहे हैं। यही कारण है कि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों को लेकर राज्य की मनमानी कार्यवाही का हमें विरोध करना चाहिए। बुद्धिजीवी भी जवाबदेह होते हैं। जवाबदेही केवल मतदान नहीं है। बुद्धिजीवी की जवाबदेही वृहद् अर्थ में उत्तरदायित्व के रूप में है। इन पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी उन्होंने उत्तरदायित्व की इसी भावना के अन्तर्गत किया है।

संसदीय सर्वोच्चता बनाम संस्थानिक स्वायत्तता

एनसीईआरटी में पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया वृहद् और सुसंगत थी। विवादित पाठ्यपुस्तकें एनसीईआरटी की पहली खेप में 2006 में प्रकाशित हुई थीं। इससे पूर्व 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार हुई थी। शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड (केब) द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 को स्वीकृति दिए जाने के बाद नया पाठ्यक्रम बना और उसके अनुरूप पाठ्यपुस्तकें तैयार की जाने लगीं। पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया की निगरानी और इन्हें स्वीकृति प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय निगरानी समिति गठित की गई जिसकी अध्यक्षता प्रो. मृणाल मिरी और जी. पी. देशपाण्डे ने संयुक्त रूप से की। अपने लेख में इस प्रक्रिया को विस्तार से बताते हुए एनसीईआरटी के तत्कालीन निदेशक और समूचे उपक्रम के सूत्रधार प्रो. कृष्ण कुमार ने लिखा है कि विवादित पाठ्यपुस्तकें भी राष्ट्रीय निगरानी समिति द्वारा स्वीकृत थीं। उल्लेखनीय है कि एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तकें तैयार कर इन्हें सिर्फ प्रस्तावित करता है। स्कूलों में इन्हें लागू करने की कार्यवाही संबंधित राज्यों के शिक्षा बोर्ड करते हैं। ये किताबें केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) से संबद्ध 11 हजार स्कूलों सहित दर्जन भर से ज्यादा राज्यों में वहां के शिक्षा बोर्डों की अनुमति से लागू रही हैं। इन राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें हैं। वहां इन्होंने एनसीईआरटी के कॉपीराइट की अनुमति से इन्हें पुनर्प्रकाशित कराया है। इन राज्यों और सीबीएसई के स्कूलों से विगत छह वर्षों में पाठ्यपुस्तकों को लेकर कोई शिकायत या आपत्ति नहीं मिली। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 में प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में गठित 21 राष्ट्रीय फोकस समूहों के दीर्घकालीन विचार-विमर्श से निर्मित हुई थी। पाठ्यपुस्तकों की निर्माण-प्रक्रिया में कार्टूनों के प्रयोग सहित शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विस्तृत विचार-विमर्श हुआ जिसमें

तीन सौ शिक्षाविदों, शिक्षकों, अधिकारियों, कार्यकर्ताओं और बच्चों ने शिरकत की। इन पाठ्यपुस्तकों में चित्रों, आंकर्डो, अखबारी कतरनों और बेव-साइटों सहित कार्टूनों को शिक्षण संदर्भ सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया गया।

इसके विपरीत प्रो. प्रभात पटनायक अपने लेख में कहते हैं कि कार्टून आपत्तिजनक हैं अथवा नहीं, इसका निर्णय केवल विशेषज्ञों पर नहीं छोड़ा जा सकता भले ही वे कितने ही विद्वान हों। स्कूली पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें विशेषज्ञों की मदद से तैयार की जाती हैं किन्तु अकादमिक क्षेत्र 'राजनेताओं' या 'राजनीतिक वर्ग' के दखल से मुक्त नहीं हो सकता। भारत जैसे समतावादी लोकतंत्र में जन-प्रतिनिधि ही सामाजिक समूहों का सही प्रतिनिधित्व करते हैं, अकादमिक क्षेत्र में वंचित सामाजिक समूहों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। बेशक, संसद की हर कार्यवाही समीक्षा और प्रश्नों के दायरे में है लेकिन इसे भी अपनी गरिमा और सम्मान के लिए आवाज उठाने का उतना ही हक है।

प्रभात पटनायक के लेख पर भी वाद-प्रतिवाद हुए हैं। चूंकि अकादमिक किसी के प्रति जवाबदेह नहीं हैं, इसलिए उनके मामले में संसद को दखल करना चाहिए। पटनायक के इस तर्क पर चर्चा करते हुए भी नीलाद्रि भट्टाचार्य ने विशेषज्ञ की आधिकारिता को प्रश्नों से परे नहीं माना है। इस क्रम में अकील विल्ग्रामी प्रभात पटनायक के पक्ष का समर्थन करते हुए कहते हैं कि केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल द्वारा कार्टूनों के पाठ्यपुस्तक में प्रयोग के औचित्य की जांच करने के लिए अकादमिकों की समिति का गठन अकादमिक संस्थान की हैसियत को कम करना नहीं है। एक लोकतांत्रिक समाज में अकादमिक आम जनता से कटे हुए नहीं रह सकते। एक ऐसी संस्कृति में जहां ज्ञान की धारणा रूपान्तरित हो रही हो, वहां विशेषज्ञता की धारणा भी बदलती है और विशेषज्ञ इससे निरपेक्ष नहीं रह सकते। सामान्य जन और विशेषज्ञों की बीच कोई अनिवार्य अलगाव नहीं है।

नीलाद्रि भट्टाचार्य को लगता है कि प्रभात पटनायक को इस बात का भय नहीं है कि आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र खतरे में है बल्कि उन्हें लगता है कि संसद का क्षेत्राधिकार खतरे में है। नीलाद्रि के अनुसार एनसीईआरटी जैसे संस्थानों की स्वायत्तता कायम रखने से संसद की संप्रभुता के लिए कोई खतरा नहीं है बल्कि इससे लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं और सुदृढ़ होती हैं।

पीटर रोनाल्ड डिसूजा मानते हैं कि पाठ्यपुस्तकों के मामले में संसद निर्णय लेने का मंच नहीं है। संसद शासन चलाने के लिए विभिन्न एजेन्सियों का गठन करती है और इनके माध्यम से काम करती है। किसी विशेष संदर्भ में यदि किसी अन्य एजेन्सी की आवश्यकता है तो इसे गठित करने में संसद सक्षम है। संसद में कार्टून प्रकरण पर मुख्यतः तीन आरोप सामने आए। पहला कार्टून के जरिए डॉ. अंबेडकर की छवि का हनन किया गया है। पाठ्यपुस्तकों में दिए कार्टूनों से राजनेताओं की गरिमा को आघात लगा है। और तीसरे ऐसी विषयवस्तु से बाल-मस्तिष्कों में गलत चीजें रोपी जा रही हैं। यदि इस क्रम में पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा करने में राष्ट्रीय निगरानी समिति या केब से भी कोई चूक हुई है तो हमें आगे बढ़ाकर एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए कि ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं। इसके लिए किसी वैधानिक प्रावधान के लिए संसद को कदम उठाना चाहिए था। संसद द्वारा 'प्रथम चरण' में ही निर्णय दे देने को डिसूजा उसी के द्वारा निर्मित निकायों के वजूद पर आघात मानते हैं।

सहमत द्वारा जारी एक विज्ञप्ति में केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल द्वारा एनसीईआरटी की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को हटाने के निर्णय की आलोचना की गई। इसमें कहा गया कि केबीनेट मंत्री के निर्णय का यह तरीका सही नहीं था। यह विज्ञप्ति रोमिला थापर, अमिताम कुडूं, जोया हसन, गोपाल गुरू, प्रभात पटनायक और एन. के. रैना के हस्ताक्षरों से जारी की गई।

अलेक्स एम. जॉर्ज पाठ्यपुस्तकों की समय-समय पर समीक्षा को जरूरी मानते हैं। साथ ही कहते हैं कि पाठ्यपुस्तकों में वर्णित दुनिया यथार्थ से परे नहीं हो सकती।

सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की समिति के पूर्व अध्यक्ष हरि वासुदेवन ने केबीनेट मंत्री सिब्बल द्वारा एनसीईआरटी के निर्देशक को राजनीति शास्त्र की नवीं से बारहवीं तक की पाठ्यपुस्तकों का वितरण रोकने के निर्देश को चिंता और दुख का कारण माना। उन्होंने कहा कि ये प्रसंग एक गलत उदाहरण बन जाएगा। इससे लगेगा कि देश की शिक्षा प्रणाली किसी नीति से परिचालित नहीं है। शिक्षा भविष्य में मनमाने फैसलों का शिकार हो जाएगी।

टी. के. राजलक्ष्मी इस प्रसंग से एक सबक लेने का आग्रह करती हैं कि शिक्षण शास्त्र और अकादमिक स्वतंत्रता अब भावनात्मक मुद्दों और समूहों की अस्मिता से प्रभावित हो सकती है। अभी तक इतिहास की किताबें विवादों में होती थीं। अब राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकें रूप और अन्तर्वस्तु दोनों के लिहाज से विवादग्रस्त हैं। उन्होंने इसे बहुत दुर्भाग्यपूर्ण माना कि संसद में बिना जांच-पडताल किए निर्णय ले लिया गया और उस सरकार ने सांसदों को समझाने-बुझाने की कोई कोशिश नहीं की जिस पर अपनी संस्थाओं को बचाने की जिम्मेदारी थी।

एनसीईआरटी की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के मुख्य सलाहकार प्रो. योगेन्द्र यादव और प्रो. सुहास पलशीकर ने एनसीईआरटी के निदेशक को 11 मई, 2012 को भेजे गए अपने त्याग पत्र में लिखा है, 'हम सोचते हैं कि अल्प समय में, उत्तेजित और अधूरी जानकारियों के चलते संसदीय बहस से उस जिम्मेदारी के प्रति न्याय की उम्मीद नहीं की जा सकती जिसकी लोकतांत्रिक समाज की नई पीढ़ियों को जरूरत है। संसदीय सर्वोच्चता के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए हम सोचते हैं कि यह असहमति जताना हमारा कर्तव्य है।'

प्रताप भानु मेहता मौजूदा सार्वजनिक संस्कृति में दो तरह की असुरक्षा देख रहे हैं। एक तो राजनीतिक असुरक्षा है। आज कोई राजनेता अपने भविष्य को लेकर सुरक्षित नहीं अनुभव करते। ये स्थिति नेहरू, अंबेडकर और पटेल के सामने नहीं थी। यह असुरक्षा बोध उनमें इसलिए है क्योंकि वे 'नंगे राजा' हैं। आज की बौद्धिक संस्कृति में संवाद का कोई साझा आधार नहीं है। बुद्धिजीवी सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मितावादी समूहों के साथ संबद्ध हो गए हैं। अधिकांश बुद्धिजीवी अपनी सामाजिक अस्मिता का अतिक्रमण नहीं करते। जो ऐसा करते हैं वे असुरक्षित हैं और असुरक्षा बौद्धिकता की शत्रु है।

विख्यात इतिहासकार के. एन. पणिक्कर भी कार्टूनों को एक शिक्षण युक्ति के रूप में देखते हैं जो शिक्षणशास्त्रीय क्रांति का प्रतिफल है। उन्हें संसद का रुख एनसीईआरटी के सलाहकारों के प्रति अपमानजनक लगा। उनका कहना था कि संसदीय सर्वोच्चता तभी कायम रह सकती है जब संसद अन्य संस्थाओं का भी सम्मान करे।

प्रो. जानकी नायर कहती हैं, संसदीय सर्वसम्मति क्या कहती है, इसे ध्यान देकर सुनना चाहिए। उच्च निजी शिक्षण संस्थानों में मानविकी या समाज विज्ञानों के लिए कोई जगह है। समाज विज्ञान विश्लेषणत्मक ज्ञान पर टिका है जिसे आक्रमण का लक्ष्य बनाया जा रहा है। राज्य आलोचना को सहन नहीं कर रहा। अस्मितावादी समूह समाज के वस्तुपरक विवेचन से और बौखला सकते हैं। विलेरियन रॉड्रिक्स मानते हैं कि ऐसे विवाद संसद के भीतर तय नहीं होते, इसके विमर्श का क्षेत्र अकादमिक मंच हैं।

कार्टून-प्रसंग की परिणति

एनसीईआरटी की 11 वीं कक्षा की राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तक में डॉ. अंबेडकर-नेहरू विषयक कार्टून को लेकर पहली रिपोर्ट 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में 6 अप्रैल 2012 को आई थी। 26 अप्रैल 2012 को केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने इस कार्टून को हटाने के निर्देश जारी कर दिए। 14 मई 2012 को मंत्री महोदय ने राजनीति शास्त्र की इन नवीं, दसवीं व 11 वीं कक्षा की किताबों का वितरण को रोककर जांच की घोषणा कर दी।

समाज विज्ञानी आशीष नंदी ने इसे 'सेफोक्रेसी' (psephocracy) कहा जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया चुनावी राजनीति और प्राथमिकता से निर्देशित होती है। उनके अनुसार, इस विवाद से संकेत मिलता है कि लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक मूल्य कहीं पीछे छूट गए हैं। 'दि इकॉनामिक टाइम्स' लिखता है कि पाठ्यपुस्तकों से कार्टूनों को निकाला जाना खतरनाक बात है। यह एक गलत नजीर बन जाएगा। शिक्षा से गंभीर सरोकार रखने वाले लोगों को चिंता है कि पाठ्यपुस्तक लेखन में क्रांति के चक्र को उलटा घुमाया जा रहा है।

रोहिणी हेंसमेन कार्टून-विवाद को एक त्रासद प्रसंग मानते हुए कहती हैं कि इसने एनसीईआरटी को संकट में डाल दिया है। एक लोकतांत्रिक समाज में बच्चों के बीच विश्लेषणात्मक चिंतन विकसित करने के लिए विपरीत अवधारणाओं को प्रस्तुत करना होता है। एनसीईआरटी की विरासत खतरे में पड़ गई है।

निवेदिता मेनन संसद और केन्द्र सरकार के रुख की तीखी आलोचना करते हुए आशंका जाहिर करती हैं कि अब बच्चों को 'अपनी राय विकसित करने' से 'तैयारशुदा उत्तरों' की ओर फिर से धकेला जा सकता है। उन्हें डर है कि अब शुद्ध 'नागरिक शास्त्र' और 'भारतीय शासन' पढ़ाया जाएगा जो बच्चों को 'उपयोगी, उत्पादक और अनुशासित नागरिक' के रूप में तैयार करेगा। सरकारी रवैया 'निर्धारित पाठ्यवस्तु' की ओर जाता दिखता है।

सुनील भी मानते हैं कि कार्टूनों के साथ इन पाठ्यपुस्तकों में फोटो, रेखाचित्रों, अखबारी-कतरनों आदि का भी इस्तेमाल हुआ। इस नए प्रयोग पर खुली बहस होनी चाहिए थी। इसका मूल्यांकन होना चाहिए था। इसमें कोई पूर्वाग्रह था तो उस पर भी बहस होनी चाहिए थी। लेकिन सिब्बल साहब ने तो इसके खिलाफ पहले ही खुला फतबा दे दिया है। उनके द्वारा घोषित समीक्षा समिति क्या राय देगी, यह करीब-करीब पहले से तय है। सुनील को लगता है कि गिजु भाई और सिब्बल ज्यादा दिन एक साथ नहीं चल सकते। दोनों में बुनियादी विरोध है।

नरेश गोस्वामी अपने लेख में कहते हैं, '...संशय इसलिए उठ रहा है क्योंकि संसदीय गरिमा में निष्ठा के विराट प्रदर्शन के अगले ही दिन संसद के सदस्य एनसीईआरटी की पुस्तक में छपे अंबेडकर के कार्टून को लेकर भय की मानसिकता के शिकार हो जाते हैं। पक्ष-विपक्ष दोनों में से कोई धैर्य और तर्क से विचार करने को तैयार नहीं दिखता कि कार्टून क्यों, कैसे और कितना आपत्तिजनक है?' गोस्वामी को लगता है कि असल में कार्टून विवाद को लेकर पूरी संसद में विरोध की जो एकता दिखी, उसकी वजह कोई उदात्त आदर्श नहीं बल्कि जनता के बीच राजनीति की साख घटना है। ...तो ऐसे में कार्टून हटाने के बहाने क्या सांसद खुद ही वैचारिक उदारता और बहुलता को नष्ट नहीं कर रहे हैं?

प्रो योगेन्द्र यादव ने इस प्रसंग से जुड़े खतरों की एक फेहरिस्त प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि कार्टून को ठीक से पढ़ा नहीं गया, ये तो सिर्फ एक शुरुआत है। वास्तविक खतरे इससे आगे हैं। पहला खतरा है कि एनसीएफ 2005 के बाद तैयार एनसीईआरटी की सभी पाठ्यपुस्तकों के विरूपण की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी और देश में पाठ्यपुस्तक लेखन में ऐतिहासिक संक्रमण के चक्र को उल्टा घुमाया जाए। दूसरे, एनसीईआरटी जैसी

संस्थाओं की स्वायत्तता गंभीर खतरे में पड़ गई है। तीसरे, पाठ की ऐसी व्याख्याओं पर जोर दिया जाने वाला है जो किसी तरह का संदेह पैदा नहीं करें, उन्हें किन्हीं भी तरह के प्रश्नों से परे होना चाहिए। आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र पर व्यापक आक्रमण का खतरा है। एक खतरा उस तरह का है जिसके प्रो. सुहास पलशीकर शिकार हुए। पाठ्यपुस्तक निर्माण से जुड़े किसी भी व्यक्ति पर शारीरिक आघात हो सकता है। ऐसे आघात की आशंका एक मनोवैज्ञानिक भय उत्पन्न करती है जो लेखक के लिए सबसे भयावह सेंसर है। प्रो. यादव अस्मिता आन्दोलन के लिए भी इसे शुभ नहीं मानते। ऐसी आक्रामकता किसी भी आन्दोलन को भीतर से सारहीन और खोखला बना सकती है।

इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने भी पूरी पुस्तक को हटाने के निर्णय को वापस लेने की अपील की थी। समाज शास्त्री शिव विश्वनाथन के अनुसार राजनेताओं ने कायरतापूर्ण अवसरवाद का सहारा लिया। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री को अकादमिकों के साथ खड़ा होना चाहिए था। उन्हें दृढ़ता से कहना चाहिए था कि डॉ. अंबेडकर दलित महापुरुष नहीं एक राष्ट्रपुरुष हैं। सस्ती लोकप्रियता के चक्कर में अकादमिकों को अवमूल्यित किया गया। 'दि इंडियन एक्सप्रेस' की एक खबर में कहा गया है कि डॉ. अंबेडकर को तार्किक रूप से वाद-विवाद करने वाले विद्वान इतिहास-पुरुष से निष्प्राण मूर्ति में बदला जा रहा है। प्रो. सुहास पलशीकर ने कार्टून विवाद पर संसद की बहस को 'दुर्भाग्यपमर्ण' मानते हुए कहा था कि हमारे लोकतंत्र में विचार-विमर्श के लिए जगह सिकुड़ती जा रही है।

सुहास पलशीकर अपने लेख में शंका जताते हैं कि ये तो शुरुआत है। पुस्तक में अकाल, घरेलू और सांप्रदायिक हिंसा और युद्ध से विनाश का भी चित्रण है, किसी को इनसे भी आपत्ति हो सकती है। ये तर्क दिया जा रहा है कि 'ये सरकारी किताब हैं' इसलिए इसमें ऐसी चीजें नहीं होनी चाहिएं। क्या राजनीति सदैव अच्छी होती है? क्या खराब राजनीति पर विचार नहीं होना चाहिए? वरिष्ठ पत्रकार राजदीप सरदेसाई कपिल सिब्बल के निर्णय को 'सिद्धान्तों के ऊपर खुद के बचाव' की संज्ञा देते हैं। उन्हें लगता है कि असहिष्णुता के चलते संसदीय विशेषाधिकार के नाम पर संसद लगातार आक्रामक होती जा रही है। राज्यों की विधानसभाएं भी इसी प्रवृत्ति की ओर बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में कार्टूनिस्ट राजनेताओं के कट-आउट बनाने वाले कलाकारों में बदल जाने हैं।

हालांकि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने अपनी एक खबर में उम्मीद जताई है कि सरकार एनसीईआरटी की स्वायत्तता को बरकरार रखेगी। ऐसा अखबार को एनसीईआरटी द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के समक्ष कार्टूनों के बचाव में दी गई दलीलों के कारण लगा है। किन्तु ऐसी कोई आशा करना अभी जल्दबाजी होगी क्योंकि एनसीईआरटी की स्वायत्तता का भविष्य काफी कुछ उस समिति की रिपोर्ट पर तय होना है जो राजनीति शास्त्र की इन पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा के लिए गठित की गई। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा गठित इस समिति के अध्यक्ष सुखदेव थोराट (चेयरमेन, आईसीएसएसआर) हैं, सदस्यों में ए. एस. नारंग (इग्नू), पेट्रिसिया मुखीम (शिलांग टाइम्स), एम. एस. एस. पंडियन, आभा मलिक और सरोज यादव (एनसीईआरटी) शामिल हैं। इस समिति की रिपोर्ट को लेकर इसकी पृष्ठभूमि के अनुरूप ही कयास लगाए जा रहे थे।

'दि हिन्दू' अखबार के अनुसार सरकार का रुख संस्कृति, कला और ज्ञान की अभिव्यक्तियों को अधिक से अधिक प्रतिबंधित करना है। जबकि डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में 25 नवम्बर, 1949 के अपने भाषण में कहा था, 'धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का एक मार्ग हो सकता है, लेकिन राजनीति में भक्ति या व्यक्ति पूजा निश्चित रूप से पतन और तदनन्तर तानाशाही की ओर जाने वाला रास्ता है।' अनन्या वाजपेयी उच्च शिक्षा और ज्ञान संस्थानों के स्तर में गिरावट पर चिंता जताती हुई कहती हैं। कि एनसीएफ 2005 द्वारा डाली गई नींव खतरे में पड़ गई है। आदित्य निगम इस प्रसंग को 'तार्किक-आलोचनात्मक विमर्श' के लिए खतरनाक मानते हुए चिंता जताते हैं कि क्या हम पिछले दिनों की ओर लौट जाएंगे?

प्रो. कृष्ण कुमार ने अपने लेख में अफसोस जताते हुए कहा है कि देश में शिक्षा के इस सर्वोच्च संस्थान के स्वर्ण जयंती वर्ष में एक माननीय संसद सदस्य ने एनसीईआरटी को विघटित करने की मांग की है। उन्होंने पूर्व में उल्लेख किया था कि पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया में देश के करीब 300 उर्वर मस्तिष्कों ने योगदान किया। मौजूदा कार्टून-प्रंसग में इससे कई गुना ज्यादा उर्वर मस्तिष्कों ने सक्रिय और रचनात्मक हस्तक्षेप दर्ज किया है। इसमें उस ज्ञान-निर्माण और शिक्षण शास्त्रीय विमर्श को गुणात्मक विस्तार मिला है जो एनसीएफ 2005 की प्रक्रिया में आरंभ हुआ था। हम यहां उल्लेख करना चाहेंगे कि मीडिया के अधिकांश से इस पक्ष को ठोस और तार्किक समर्थन मिला है। उन्होंने कार्टूनों पर आपत्ति दर्ज कराने वाले अस्मितावादी और संसद-सदस्यों के समवेत स्वर के विरुद्ध अकादमिकों और संस्थान का पक्ष लिया है। यहां तक कि प्रो. थोराट समिति की रिपोर्ट पर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का संपादकीय (4 जुलाई 2012) कहता है कि कार्टूनों का मसला बेमानी है, शैक्षिक संस्थानों का क्षमता-वर्धन पहली प्राथमिकता है। 'दैनिक भास्कर' का संपादकीय (4 जुलाई 2012) कहता है, 'थोराट कमेटी जैसे भावावेश की स्थिति में बनी, उससे उसके निष्कर्षों पर उस माहौल का असर होने का अंदेशा पैदा हुआ। समिति के एक प्रतिष्ठित सदस्य द्वारा राजनीतिक बनाम शैक्षिक औचित्य का प्रश्न खड़ा करने से नई बहस खड़ी हुई है, जबकि आवश्यकता शिक्षा को ऐसे विवादों से दूर रखने की है'। ◆

आधार-संदर्भ

1. चन्द्रभान प्रसाद, द इकनॉमिक टाइम्स, 4 जून, 2012
2. नीलाद्रि भट्टाचार्य का जवाब, द हिन्दू, 4 जून, 2012
3. अकील बिल्ग्रामी, द हिन्दू, 4 जून, 2012
4. नीलाद्रि भट्टाचार्य, द हिन्दू, 29 मई, 2012
5. प्रभात पटनायक, द हिन्दू, 22 मई, 2012
6. अलेक्स एम. जॉर्ज, द इण्डियन एक्सप्रेस, 30 मई, 2012
7. टी. के. राजलक्ष्मी, फ्रन्टलाइन, वोल्यूम 29, अंक 11, 2-15 जून, 2012
8. हरीश त्रिवेदी, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 26 मई, 2012
9. आनन्द तेलतुबड़े, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 2 जून, 2012
10. कृष्ण कुमार, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकल, वोल्यूम, 2 जून, 2012
11. कुमकुम राय, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वोल्यूम, 2 जून, 2012
12. वेलेरियन रॉड्रिक्स, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वोल्यूम, 2 जून, 2012
13. पीटर रोनाल्ड डिसूजा, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वोल्यूम, 2 जून, 2012
14. धरमिन्दर कुमार, द इण्डियन एक्सप्रेस, 28 मई, 2012
15. अनुपमा राय द्वारा, रोज ऑफ एन्प्रोप्रियट इण्डियन पॉलिटिकल कार्टून्स
16. धनंजय राय, progati.in, 19 मई, 2012
17. कांचा इलैया, आउटलुक, 28 मई, 2012
18. हरि वसुदेवन, द हिन्दुस्तान टाइम्स, 18 मई, 2012
19. राजदीप सरदेसाई, द हिन्दुस्तान टाइम्स, 18 मई, 2012
20. रोहिणी हेंस्लेन, हिमल साउथ एशियन, 17 मई, 2012
21. हरिश एस. वानखेड़े, द इण्डियन एक्सप्रेस, 18 मई, 2012
22. चार्मी हरिकृष्णन, द इण्डियन एक्सप्रेस, 18 मई, 2012
23. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 18 मई, 2012
24. निवेदिता मेनन, kafila.org, 16 मई, 2012
25. बी मुरलीधर रेड्डी, द हिन्दू, 16 मई, 2012
26. द फाइनेंसियल एक्सप्रेस, 16 मई, 2012
27. जी कृष्ण कुमार, द हिन्दू, 16 मई, 2012
28. प्रताप भानु मेहता, द इण्डियन एक्सप्रेस, 16 मई, 2012

29. कश्मीरी एमपी, राखी चक्रबर्ति, द इकॉनोमिक टाइम्स, 16 मई, 2012
30. मुशीरुल हसन, द हिन्दू, 16 मई, 2012
31. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 17 मई, 2012
32. वेंकटेश रामाकृष्णन, फ्रंटलाईन, वोल्यूम 29, अंक 10, 19 मई, 1 जून, 2012
33. सुहास पलशीकर, द हिन्दू, 16 मई, 2012
34. द इकॉनोमिक टाइम्स, 16 मई, 2012
35. कुलदीप कुमार, द इकॉनोमिक टाइम्स, 16 मई, 2012
36. अनन्या वाजपेयी, द टेलिग्राफ, 16 मई, 2012
37. हिमांशी धवन, द टाइम ऑफ इण्डिया, 16 मई, 2012
38. आर. अखिलेश्वरी, द हिन्दू, 15 मई, 2012
39. द इण्डियन एक्सप्रेस, 15 मई, 2012
40. जानकी नैयर, द हिन्दू
41. द इकॉनोमिक टाइम्स, 15 मई, 2012
42. शिव विश्वनाथन, द इकॉनोमिक टाइम्स, 15 मई, 2012
43. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 15 मई, 2012
44. कपिल सिब्बल, याहू डॉट कॉम, 14 मई, 2012
45. पीटीआई, द हिन्दुस्तान टाइम्स, 14 मई, 2012
46. आदित्य निगम, kafila.org, 14 मई, 2012
47. डीएनए, 14 मई, 2012
48. सीएनएन, आईबीएन, 14 मई, 2012
49. द हिन्दू, 14 मई, 2012
50. योगेन्द्र यादव, द इण्डियन एक्सप्रेस, 14 मई, 2012
51. वंदिता मिश्रा, द इण्डियन एक्सप्रेस, 14 मई, 2012
52. द बिजनेस स्टेंडर्ड, 13 मई, 2012
53. योगेन्द्र यादव और सुहास पलशीकर, आउटलुक, 12 मई, 2012
54. डिबेट्स वर्सेज डिलीट, द इण्डियन एक्सप्रेस, 12 मई, 2012
55. जे बालाजी, द हिन्दू, 11 मई, 2012
56. स्कॉलर्स ऑफिस रेनसेक्ड पीटीआई, द हिन्दू, 12 मई, 2012
57. ई. पी. उन्नी, द इण्डियन एक्सप्रेस, 12 मई, 2012
58. जे. पी. यादव और बसंत मोहन्ती, द टेलिग्राफ, 12 मई, 2012
59. द हिन्दुस्तान टाइम्स, द हिन्दुस्तान टाइम्स, 11 मई, 2012
60. अविजित घोष, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 12 मई, 2012
61. ए पीटिशन
62. संपादकीय, टाइम्स ऑफ इण्डिया
63. असुरक्षित राजनीति और पाठ्यपुस्तकें- अपूर्वानंद, जनसत्ता, 18 मई, 2012
64. वंचित समाज और राजनीति, सुधीन्द्र, 18 जून, 2012 भदौरिया/जनसत्ता
65. कार्टून विवाद का सबक, सुनील, जनसत्ता 30 मई, 2012
66. विवाद के बीच एक संवाद, लाल्टू, जनसत्ता, 16 मई, 2012
67. जनतंत्र के मजाहिया खाके में, गिरिराज किशोर, जनसत्ता, 26 मई, 2012
68. घटती साख के बीच जश्न, नरेश गोस्वामी, जनसत्ता, 22 मई, 2012
69. संपादकीय, जनसत्ता, 14 मई, 2012
70. संपादकीय, दैनिक भास्कर, 4 जुलाई, 2012